Research Paper POLTICAL SCIENCE

प्राचीन परम्परा में आजीविका के साधन

PROF. DR. B.L SETHI | DIRECTOR TRILOK INSTITUTE OF HIGHER STUDIES AND RESERCH HOTEL OM TOWER, CHURCH ROAD M.I JAIPUR- 302001

SMT. POOJA PUNIYA | RESERCH SCOLAR, JJT UNIVERSITY JHUNJHUNU

KEYWORDS

प्राचीन काल मे आजीविका के प्रमुख छह साधनों का निर्देश पाया जाता है। आजीविका के साधनों के अध्ययन से अवगत होता है कि सभी वर्ग के व्यक्तियों के लिए आजी. विका छः साधन का उल्लेख मिलता है।

1.	असि	–	सैनिक वृति
2.	मसि	–	लिपिक वृति
3.	कृ ा	–	खेती का कार्य
4.	विद्या	–	अध्यापन का कार्य या ाास्त्रोपदेश
5.	वाणिज्य	–	व्यापार, व्यवसाय
6.	शिल्प	–	कला कौशल

1. असिकर्म – असिकर्म का अभिप्राय तलवार, मुद्गर आदि अस्त्र धारण कर सेवा करने से है। वस्तुतः यह सैनिक वृत्ति है। पुलिस या सेना की नौकरी करते हुये आजीविका अर्जन करना असिवृत्ति के अन्तर्गत है। असिवृत्ति कार्य उस क्षेत्र तक ग्राह्य है जिस क्षेत्र में समाज धर्म, देश एवं रा ट्र की रक्षा का सम्बंध रहता है। जब असिकर्म उस क्षेत्र का अतिक्रमण कर जाता है उस समय त्याज्य हो जाता है। जो सामने अस्त्र लिये हुए खड़ा है, देश को पदाक्रान्त करना चाहता है। ऐसे व्यक्ति के ऊपर ास्त्र का प्रयोग करना अनुचित नहीं माना जाता। आदिपु. राण में ''क्षत्रिया ास्त्रजीवित्वम्'' का उल्लेख आया है। इस उल्लेख से यह स्प ट होता है कि ास्त्र धारण कर क्षत्रिय जाति के व्यक्ति आजीविका सम्पन्न करते थे। ास्त्रजीवी व्यक्तियों का समाज में वही स्थान था, जो ाास्त्रजीवियों का है। रक्षा व्यवस्था क्षत्रिय के हाथ में थी, अतएव अस्त्र–शस्त्र के व्यवहार द्वारा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना असिकर्म है।

2. मसिकर्म– मसिकर्म का तात्पर्य लिपिक कार्य से है। यह लिपिक का कार्यकर कार्यालय का संचालन करता था। जो व्यक्ति प्रशासन के किसी भी कार्य में योगद. ान के लिए लिपिक या गणक का काम करता वह मसिवृत्ति कहलाता था। लेखपत्र प्रस्तुत करना, प्रज्ञापना लिखना, आज्ञा लिखना आदि कार्य लेखक के माने जाते थे। संक्षेप में मसिजीवि व्यक्ति राज्यशासन में सहायता देने के लिए लेखक का कार्य सम्पन्न करता है।

3. कृ ाकर्म – आदिपुराण में भूक णि को कृ ा कहा है। जमीन को जोतना, बोना कृ ाकार्य है। कृ ाकर्म भारत के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। कृ ा के लिए अच्छी और उपजाऊ धरती, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रम और बीज आवश्यक है। खेत की जमीन की मिट्टी कई प्रकार की होती थी। उपजाऊ मिट्टी कृ ण लाल और पीत वर्ण की मानी गयी है। कृ ाजीवी श्रमिक स्वयं की खेती करने के अनन्तर दूसरों के कृ ाकर्म में भी सहायता प्रदान करते थे। इनके पास हल, बैल और कृ ा के औजार रहते थे और बुलाये जाने पर दूसरों के खेत को बो–जोत देते थे। कृ ा विद्या के विशारदों की बडी ही प्रति ठा थी, जो व्यक्ति कृ ा के कार्यो को सम्पादित करते थे, वे समाज में आदर की दृ ट से देखे जाते थे। कृ ा कर्म को एक आवश्यक और उपयोगी जीविका का साधन माना है।

आर्थिक विकास की दृ ट से कृ ा का महत्वपूर्ण स्थान है। कृ ा और औद्यो. गिक विकास दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित है। प्रारम्भ में ये भले ही एक दूसरे के प्रतियोगी मालूम पडे, किन्तु दीर्धकाल में इनका सम्बंध एक दूसरे का अनुपूरक है। आर्थिक विकास के इतिहास का आलोकन करने पर ज्ञात होता है कि औद्योगिक विकास कृ ा के द्वारा ही पु ट होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक दृ ट से कृ ाकर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके कुछ तत्व–मिट्टी, जलवायु, धरातल, उर्वरा ाक्ति आदि सापेक्षतः अपरिवर्तनीय है, पर भूमिव्यवस्था, सिंचाई, खाद आदि ऐसे तत्व है जिनमें समयानुसार परिवर्तन कर कृ ा का विकास किया जा सकता है। आदिपुराण में परिवर्तनीय साधनों में सिंचाई को बहुत महत्व दिया है।

4. सिंचाई

सिंचाई दो रूपों में सम्पन्न की जाती थी, अदेवमातृका और देवमातृका। अदेवमातृका का तात्पर्य नदी, नहर, आदि द्वारा सिंचाई के प्रबन्ध से है। आदिपुराण में बताया गया है कि कृ ाक नहर और नदी के जल से खेती को सींचते थे एक अन्य सन्दर्भ में आया है कि सिंचाई के लिए घटीयंत्र (रहट) भी व्यवहार में लाया जाता था। जो कृ ाक अपनी फसल को समृद्ध बनाना चाहते थे और एक ही खेत से अधिक उपज लेना चाहते थे, घटीयंत्र का व्यवहार करते थे।

घटीयंत्र के अतिरिक्त कूप वापी सरोवरों से भी सिंचाई की व्यवस्था की गयी थी। नदियों से छोटी–छोटी कुल्याएं–नहरें निकाली गयी थी और इन नहरों से सिंचाई की जाती थी वापी और प्रपा जल के संचित भण्डार थे। प्रपा का अर्थ वर्तमान 'अहर' है। कृ ाक आज भी खेत के नीचे गडढा खोदकर पानी का संचय करते है और उस पानी से खेतों की सिंचाई करते हैं।

कुओं से भी सिंचाई होती थी। कुओं से रहट लगाया जाता था और रहट द्वारा खेतों को सींचा जाता था । तड़ाग भी सिंचाई के लिए काम में लाये जाते थे। इस प्रकार आदिपुराण के भारत में सिंचाई की व्यवस्था पर्याप्त समृद्धि थी। व र्ा भी समयानुसार पर्याप्त रूप में होती थी जिससे खेती अच्छे रूप में उत्पन्न होती थी।

फसल को काटना और मांडना – आदिपुराण में कृ ा की विभिन्न स्थितियों का चित्रण आया है। बोना, निराना, आदि क्रियाओं के अतिरिक्त काटना, मांडना और औसना जैसी क्रियाऐ भी सम्पन्न की जाती थी। कृ ाक पके हुए खेतों की समृद्धि को देखकर आनन्द विभोर हो जाते थे और जब खेत बिल्कुल पक जाते और काटने की स्थिति में आ जाते तब वे परिवार सहित हंसिये लिए हुए खेत पर पहुँच जाते थे। खेत काटते समय ीघ्रता करने के कारण संघ र्ा उत्पन्न हो जाता था और इस संघ र्ा की सूचना तूर्यवाद्य द्वारा दी जाती थी20 खेत काटकर खलिहान में ले आते थे। इसे काटकर अनाज के रखने की क्रिया को मांडना कहा जाता है। वास्तव में मांडने की क्रिया उस समय पूर्ण होती है, जब बैलों द्वारा दंवरी की जाती है और भ. ूसा को अलग कर अनाज को एकत्र किया जाता है। आदिपुराण में पलाल ाब्द का प्रयोग हुआ है। जो ओसने के कृ ाकर्म की ओर संकेत करता है।

ृ ा के लिए राज्य से प्राप्त साधन – कृ ा विकास का दायित्व आदिपुराण के भारत में राजा पर था। राज्य की ओर से हल, बैल आदि तो किसानों को दिये ही जाते थे, पर वह बीज एवं अन्य साधन भी कृ ाकों को प्रदान करता था। कृ ा विकास के लिए खाद, बीज एवं अन्य उपकरणों की व्यवस्था राज्य द्वारा होनी चाहिए। जो राज्य कृ ाकों द्वारा भलीभांति कृ ा कराकर धान्य संग्रह करता है, वही अपने देश को संन्तु ट एवं सुखी रख सकता है। आर्थिक समृद्धि का मूलकारण कृ ा है। कृ ा के लिए पशुओं और मवेशियों की रक्षा का भी पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए। इस प्रकार आदिपुराण में कृ ा समृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न किया गया है। राज्य की ओर से समय विशे ा के लिए अन्न का भी संचय किया जाता था।

विद्याकर्म – 'विद्या ाास्त्रोपयजीवने' द्वारा आदिपुराणकार ने स्वयं ही ाास्त्रवृति की ओर संकेत किया है। विद्या द्वारा आजीविका किये जाने से यह ध्वनित होता है कि कुछ व्यक्ति पठन– पाठन द्वारा आजीविका सम्पन्न करते थे। विद्या कर्म का सामान्यतः अर्थ उपाध्यायकर्म से है। शिक्षा देना एवं आवश्यक क्रियाकाण्डों का सम्प. ादन करना आजीविका का एक साधन था। आदिपुराण के एक सन्दर्भ में बताया गया है कि राजा को अपने राज्य में विद्या व्यसनी और ाास्त्र द्वारा आजीविका सम्पन्न करने वाले व्यक्तियों की आजीविका का ध्यान रखना चाहिए। जो राजा सेवकों को उचित आजीविका नहीं दें सकता है उस राजा का राज्य कीट– खादन से न ट हुए का ठ के समान निःसार हो जाता है अतः मसिजीवी और विद्याजीवी व्यक्तियों की आजीविका का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

वाणिज्य कर्म – व्यापार करना वाणिज्य है। वाणिज्य का आर्थिक विकास की दृ ट से अत्यधिक महत्व है। आदिपुराण के एक सन्दर्भ में चार विद्याओं का उल्लेख

आया है ये विद्याएं आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में वार्ता की व्याख्या कृ ा, पशुपालन, और व्यापार के रूप में की गयी है। धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्रादि खनिज पदार्थ की उत्पति का साधन वार्ता है। वार्ता के अभाव में आर्थिक समृद्धि सम्भव नहीं है। जहां कृ ा, पशुपालन और वाणिज्य व्यवसायों की उन्नति न हो वहां देश की आर्थिक उन्नति कभी नहीं हो सकती। इसी कारण आदिपुराण में वाणिज्य व्यवसाय के साथ पशुपालन और पशु व्यापार को महत्व दिया गया है।

पशुपालन– पशुओं के पालन के समय बहुत ही सतर्क एवं सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि पशुओं को कोई कीडा काट ले, तो तत्काल उसका इलाज होना चाहिए। इसी प्रकार पशुओं के घाव आदि को दूर करने की विधियाँ भी प्रचलित थी। नस्यकर्म की जानकारी भी आदिपुराण के भारत को थी। मवेशी के कई रोग नस्यकर्म द्वारा अच्छे किये जाते थे। मवेशी के लिए चारागाह थे। उन्हें चराते समय कण्टक और पा ाण रहित भूमि में ही चराया जाता था। जिस चारागाह में मवेशी को रखा जाता था, वहां ीतातय जन्य बाधा भी उत्पन्न नहीं होती थी।

गाय, भैंस आदि पशुओं की प्रजनन क्रिया भी उस समय ज्ञात थी। गोप हाल के उत्पन्न बच्चे को एक दिन माता के साथ रखता था। दूसरे दिन दयाभाव से मुक्त हो उसके पैर में रस्सी बांधकर धीरे से खूंटे से बांध देता था। जरायु एवं नाभि के नाल को बडे यत्नपूर्वक काटा जाता था। यदि कदाचित् नाल काटने के कारण कीडे आदि उत्पन्न हो जाये, तो उनका प्रतिकार भी किया जाता था। बछडों को दूध पिलाना, सवर्द्धन के लिए उपयुक्त वातावरण की व्यवस्था करना, योग्य औ ाधियों की व्यवस्था करना आदि बातें प्रचलित थी। पशुओं की हड्डी या सन्धि स्थान के विचलित होने पर उसके बैठाने की क्रिया भी उस समय लोग जानते थे। अतएव यह स्प ट है कि वाणिज्य व्यवसाय के साथ पशुपालन भी आर्थिक दृ ि ट से महत्वपूर्ण था।

व्यापार– पशुओं का व्यापार भी किया जाता था । ग्वाले गाय, बैल आदि पशुओं को खरीदते थे और अधिक कीमत पर उन्हें बेचते थे। इस खरीद विक्रय में एक प्रतिभ. ू–जमीनदार भी होता था, जिसकी जमानत पर मवेशी को खरीदा जाता था।

विदेश व्यापार– व्यापार के लिए विदेश भी जाया जाता था । व्यापार स्थलमार्ग और जलमार्ग दोनों के द्वारा सम्पादित होता था। आदिपुराण के एक सन्दर्भ में आया है कि भवदेव नामक व्यक्ति धनोपार्जन कर रतिवेगा के साथ विवाह करना चाहता है। अतएव वह व्यापार हेतु विदेश गया और वहां पर नाना प्रकार की वस्तुओं का क्रय विक्रय करता रहा।

व्यापार करने के लिए सार्थवाहों का समूह भी जाता था। इस सार्थवाह समुदाय का एक व्यक्ति संघपति होता था और सब उसी के आदेश से कार्य करते थे। सार्थवाहों का यह वर्ग व ों में वापस लौटता था, अतएव उनके साथ क्रय–विक्रय की वस्तुओं के अतिरिक्त खाद्य, भोजन, पान आदि भी प्रचुर परिमाण में संचित रहते थे। इस कथन की पु ि ट मेरुकन्दत नामक सेठ के आख्यान से होती है। यह सेठ व्यापारी समुदाय संघ का अधिपति था और इसी के परामर्श से संघ का संचालन होता था।30 श्रीपाल की जलयात्राएँ भी व्यवसायियों के जलव्यापार को सूचित करती है। व्यापा. रियों और व्यवसायियों के चरित्र के अध्ययन से यह बात ज्ञात होती है कि व्यवसाय में श्रम, पूँजी के अतिरिक्त साहस की भी आवश्यकता थी। जलमार्ग से जाते समय जलपातों का भग्न होना एवं आंधी–तूफान के द्वारा जलपातों का बीच जलमार्ग में फंस जाना आदि तथ्य जलयात्रा की कठिनाइयों को सूचित करते है।

शिल्पकर्म – आदिपुराण में 'शिल्पं स्यात्करकौशलम्' अर्थात् हस्तकौशल को शिल्पकर्म कहा है। हस्तकौशल के अन्तर्गत बढ़ई लोहार, कुम्हार, चमार, सोनार आदि की उपयोगी कलाएं तो सम्मिलित थी ही, पर चित्र खीचना, फूलपत्ते काढना आदि भी इसी श्रेणी में परिगणित थे। शिल्पकर्म को आजीविका की दृ ि ट से महत्वपूर्ण माना गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में शिल्कर्म करने वाले को प्रतिव र्ा पांच सौ पण मिलता था । शिल्पी का महत्व कई दृ ि टकोणों से बहुत अधिक है। इनके कई भेद किये गये है। अर्थशास्त्र में कारू शिल्पी को प्रतिव र्ा एक सौ बीस पण वेतन देने की बात कही गयी है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'शिल्पी' ाब्द की व्याख्या करते हुये स्नायक, संवाहक, अरन्तरक, रजक, मालाकार आदि को शिल्पी कहा है। उबटन बनाना, सुगन्धि ात पाउडर तैयार करना, चन्दनद्रव्य तैयार करना, कस्तूरी एवं कुंकुम आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार के चूर्ण तैयार करना शिल्पियों का ही कार्य था। शिल्पी कई दृ ि टयों से समाज के लिए उपयोगी समझे जाते थे।

आर्थिक आय के साधन – राजको ा की समृद्धि प्रजा द्वारा वसूल किये गये करों से होती ही थी, पर आय के और भी साधन थे। कृ ा पर उपज का भा ठांश कर लिया जाता था। खानों से भी स्वर्ण, रजत, लौह मणिमाणिक्य आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते थे। एक सन्दर्भ में ऐसा भी संकेत मिलता है कि स्वर्ण बनाने की विधि भी रा ट्र में प्रचलित थी। बताया गया है कि रसायन विशे ा के सम्पर्क से लौह स्वर्ण बन जाता था और यह स्वर्ण राजको ा की समृद्वि का साधन होता था। कृ ा, उद्योग, गोपालन, अश्वपालन हस्तिपालन, सुरा, वैश्यालय, नट, नर्तक, गायक, वादक, आदि से भी राज्य को आय होती थी। दुर्ग, सेतु वन और पथ भी आय के साधन थे।